नारी विद्रोह के भारतीय मंच

दीप्ति कुमारी, रिसर्च स्कॉलर, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय

संस्कृति के आयाम आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सृजनात्मक उपादानों तक बहुत दूर तक फैले हैं। संस्कृति का विकास मानव की जैविक स्तर पर एक सुसंगठित व्यवस्था की ओर अग्रसर होती यात्रा का परिणाम है। संस्कृति के लिए प्राचीनतम शब्द कृष्टि है जिनकी उत्पत्ति संस्कृत की कर्ष धातु से मानी जाती है। जिसका अर्थ है खेती करना, संवर्द्धन करना, बोना आदि। जिसका सांकेतिक और लाक्षणिक अर्थ होगा – जीवन की मिट्टी को जोतना और बोना। कृषि के लिए जिस प्रकार भूमि शोधन और निर्माण की प्रक्रिया आवश्यक है उसी प्रकार संस्कृति के लिए मन के संस्कार-परिष्कार की अपेक्षा होती है।

संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ की गई है, किंतु वे सभी इस बात का समर्थन करती है कि संस्कृति परिष्कार, परिमार्जन और शोधन की ही एक क्रिया है जिसमें व्यक्ति और समाज एक व्यापक बौद्धिक चेतना तथा सौंदर्य बोध से अपना सृजनात्मक व्यवहार निर्मित करता है। संस्कृति मनुष्य की मात्र उपयोगी क्रियाकलापों की सीमा का अतिक्रमण करती है और चेतना को अध्यात्म, सौंदर्य और सृजन के स्तर पर प्रतिष्ठित कर उसके जीवन में गुणों का समावेश करती है। संक्षेपतः संस्कृति एक अन्तर्निहित जीवन गुणता है जो बहुत गहरे मानव स्वभाव में समाहित है।

संस्कृति समाज के क्रम-विकास से जुड़ी है। संस्कृति विकास की अवस्था में जीने का अर्थ है सामाजिक सरोकारों के बीच जीना। कई बार व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कारकों से उपयुक्त समायोजन के अभाव में शराबखोरी, मादक दवाओं का सेवन, अपराध, वेश्यावृत्ति तथा मानसिक अवसाद जैसी स्थितियों में असामाजिक तत्व उभरते हैं। जब समाज लक्ष्यभ्रष्ट होता है तो गरीबी, बेरोजगारी, हिंसा, दमन, भ्रष्टाचार, निरक्षरता, बीमारी, भोगवृत्ति आदि का प्रसार होता है। अत्याधुनिकता के कारण व्यक्ति और समाज के अपकर्ष सामने आ रहे है। परिणामतः संस्कृति के साथ उसका रिश्ता द्वन्द्व में आ गया है। जिसके कारण, पर्यावरण का विनाश, औद्योगीकरण और भोगवादी दर्शन ऐसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ला रहा है जिससे संस्कृति का संकट उठ खड़ा हुआ है।

सारे क्रियाकलाप और विचार धन और उत्पादन पर केंद्रित होकर भोगवाद पर स्थित हो गए हैं। उससे मूल्य ही समाप्त नहीं हुए वरन् सौंदर्य बोध भी समाप्त हो गया है। इस भोगवादी दृष्टि से मानव संवेदना-शून्य होता जाता है। संवेदना शून्य हो जाने के कारण ही आज का मानव विज्ञान के हाथों अधिक विध्वंसक हो गया है। जो अच्छाइयाँ उसने विकासक्रम में अर्जित की थी, धीरे-धीरे उन्हें वह गँवा रहा है।

व्यक्ति का मन प्रदूषित होता है तो समाज और संस्कृति भी प्रदूषित होते हैं। मन ही मनुष्य का सारथी है। अपभ्रष्ट मन ही अनेक बुरे कर्मों का भागी बनता है जिससे मानवता चीत्कार उठती है चारों ओर सांस्कृतिक अराजकता का अंधेरा गहन होता जाता है, राह नहीं सूझती। अपनत्व, संवेदनशील हृदय जो किसी उच्च संस्कृति की जड़े कही जाती है वह समाप्त प्रायः हो जाता है।

भारतीय क्षितिज पर जो नक्शा उभर रहा है उसमें राष्ट्रों की होड़, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का धावा, भोगवादी प्रवृत्ति, उपभोक्ता बाजारों की खोज देश को चैन से नहीं रहने देगी। जिसमें सांस्कृतिक सीमाएँ टूट रही हैं। सभी स्थानों पर एकांगीपन का अहसास मानव की अंतर्रात्मा को कचोटता है। जिसका प्रतिभासित रूप उसके परिवार व समाज में तनाव के रूप में दिखाई देता है। अविश्वास और अज्ञात का भय भी चेतना में पूर्णतः साम्राज्य पा जाता है जिससे व्यक्ति निमर्म एवं निर्दयी बन गया है। सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हिंसा, द्वेष, घृणा, अपराध, स्वार्थ जैसी वृत्तियों में परिवर्तित हो रहा है।

सांस्कृतिक प्रदूषण समाप्त करने के लिए घर, परिवार, शिक्षा-संस्थान, कार्यालय, अन्य संस्थान सभी को नैतिक उत्थान का सर्जनात्मक आधार बनाना जरूरी है जो जन-जन की पीड़ा को समझ कर उसे जाति, वर्ण, संप्रदाय की संकीर्णताओं से मुक्त करके राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरोए क्योंकि आज सांस्कृतिक व राष्ट्रीयता ही एक ऐसी डोरी है जो संपूर्ण विश्व

को बाँध सकती है। यह कार्य कठिन भी नहीं क्योंकि भारत में अनादिकाल से चाहे सत्तामूलक एकता न रही हो किंतु भावमूलक सांस्कृतिक एकता हमेशा से रही है।

रामायण की सीता

सीता भारतीय जनमानस के प्रतीक राम की शक्ति है। वे युगीन चेतना के संवहरण का माध्यम बनी है।

रामायण की सीता का महत्व रामपत्नी होने में है। सीता अलौकिक होते हुए भी मानवी धरातल पर चित्रित की गई है। उसमें अलौकिकत्व भी है और मानवी संवेदना भी।

जनमानस में सीता के व्यक्तित्व की अवधारणा उस नारी की है जो पुरुष की प्रतिच्छाया भर है। जीवन में जो भी आए उसे सहना ही नारी का आदर्श है। उसे सर्वसह्य मौन के कारण ही वे वरेण्य हो गई है। भारतीय नारी की परम्परागत छवि सीता की ही छवि है जो प्रत्येक परिस्थिति में पति की सहचरी, पतिव्रता, सहनशील, त्यागमयी और भावमयी है।

धूमिल सीता भू-मन के अन्तरतम की आस्था है, पृथ्वी के उर की अकलुष ज्योति है, जीवन के ज्ञान को शिवमय बनाने वाली है। वे मनुष्य के चरम विकास की संभावनाओं को उजागर करती है। सीता की अग्नि परीक्षा नारी के स्वाभिमान पर आघात हैं

सीता राम की सच्ची सहधर्मिणी बनकर लोक कल्याण के लिए बन जाना स्वीकार करती है। और बच्चे जी से भवहित के लिए सब कुछ छोड़ देती है।

महाभारत की नारी

किसी भी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण एवं विकास में नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रायः सभी देशों तथा युगों में स्त्री और पुरुष में पुरुष को श्रेष्ठता प्रदान की गई है। पुरुष वर्ग का स्त्री जाति के प्रति सद्व्यवहार समाज की सभ्यता का परिचायक होता है क्योंकि सभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्ति ही समर्थ होते हुए भी अपने स्वार्थ को त्याग कर दुर्बलों के प्रति उदात्त भाव रख सकते हैं। इसी दृष्टि से देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए नारी की स्थिति को संस्कृति का एक प्रमुख मापदण्ड माना गया है।

महाभारत की गांधारी, द्रौपदी, कुन्ती, सुभद्रा, विदुला, सत्यभामा आदि के चरित्र की ओजस्विता एवं कमनीयता ही स्त्री के स्थान विचार में हमारा प्रमुख आधार है। कुलीन नारी विविध कौटुम्बिक भूमिकाओं में गौरव पाती थी। कन्या साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा थी। महाभारत की नारी का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व था, अपना मत था, चिन्तन करने की शक्ति, निर्णय लेने की हिम्मत तथा आदेश देने का ओज था। वह पुरुष की अनुगता नहीं थी संगता थी।

महाभारत की नारी भारतीय नारी की पथप्रदर्शिका है। यद्यपि आधुनिक युग की आवश्यकताओं के आधार पर नारी का कार्यक्षेत्र बदल गया है उसकी आकांक्षाएँ अपेक्षित कार्य भिन्न हो गये हो, तो भी भारतीय संस्कृति के आधारभूत नारी गुण वे ही हैं। उस दृष्टि से आधुनिक भारतीय नारी को प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिए महाभारत की नारी का महत्व अनुपेक्षणीय है।

जब समुद्र मंथन से श्रम समृद्धि का प्रतीक लक्ष्मी जैसा नारी रत्न प्राप्त होता है। जब हर संकट के समय बुद्धि-विवेक की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती से सलाह ली जाती है। जब देवासुर संग्राम में असुरों को परास्त करने के लिए देवताओं को भी नारी के दुर्गा रूप की जरूरत पड़ती है।

दुर्गा ही समय पर चंडी, काली, महाकाली वरन असुरों का वध करके देवताओं को उनकी स्वतंत्रता बहाल करती है। आदि नारी का यह महान क्रांतिकारी और कल्याणी का संयुक्त रूप ही उसे मानवता के इतिहास में (विदेशी प्राचीन कथाओं में भी कोई न कोई ऐसी देवी उपस्थित है, भले ही उसका नाम, रूप दूसरा हो) देवता पुरुषों से भी ऊपर देवी माँ, माँ दुर्गा, महाशक्ति और महाशक्ति और महाकाली के रूप में प्रतिष्ठित कर गया।

आदिकाल से लेकर आज तक नारी के इस शक्ति रूप की उपासना होती आई है। ऐसी मातृशक्ति जो शांतिकाल में ममतामय, त्यागमयी है तो आपातकाल में रक्षक और संहारक भी।

उपनिषद् काल में गार्गी और मैत्रेयी की महानता का उल्लेख है। गार्गी अधिक प्रखर विदुषी नारी के रूप में उभरी है।

मध्यकाल का पूरा इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब पूर्वकालिक वेदशास्त्र पढ़ने वाली, ऋचाएँ लिखने वाली, शास्त्रार्थ करने वाली विदुषियों ने इस युग में आकर अस्त्र-शस्त्र से सज्जित हो, दुश्मनों से लोहा लिया और आन पर बन आने की स्थिति में अपनी छाती में कटार भोंक, आत्मघात कर लिया या सामूहिक चिंताएँ सजाकर जौहर की भेंट चढ़ गयी।

ऋषि याज्ञवल्क्य से समानता के स्तर पर शास्त्रार्थ करना मनुष्य के अस्तित्व, सृष्टि की उत्पत्ति पर चकित कर देने वाले प्रश्न पूछना और जब तक पूछते जाना जब तक ऋषि ने टोक न दिया की गार्गी बस।

मैत्रेयी ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी थी। भक्तिकाल में मीराबाई द्वारा अपने आराध्य के प्रेम में विह्वल हो पति-परिवार से विद्रोह और इस प्रकार अपने अतृप्त प्रेम का औदात्तीकरण करके भक्त कवयित्री का ऊपर पद पाना।

गुप्तकाल में ध्रुवस्वामिनी द्वारा अपने ही पति का परित्याग। रत्नावली द्वारा स्वयं पर बुरी तरह आसक्त पति को फटकार और उस अंततः तुलसीदास जैसे महाकवियों का निर्माण अपने आप में अनूठी कहानियाँ है। विदूषी विद्योत्तमा द्वारा मूर्ख पति का तिरस्कार करना ही कालिदास का निर्माण है।

मध्यकाल का पूरा इतिहास जैसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब पूर्वकालिक वेदशास्त्र पढ़ने वाली, ऋचाएँ लिखने वाली, शास्त्रर्थ करने वाली विदुषियों ने इस युग में आकर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो दुश्मनों से लोहा लिया।

धार्मिक विश्वास, आध्यात्मिक भावना और लोक-संस्कृति को सुरक्षित रखने में स्त्रियों का अधिक हाथ रहता है।

आज एक ओर है वे नारीवादी स्त्री जो पश्चिमी तर्ज पर घर व बच्चों को अपने लिए कैद का प्रतीक मानती है और सभी स्तरों पर पुरुषों की बराबरी करना चाहती है। चाहे भीतर से उन्हें यह सब पसंद हो या नहीं, मात्र प्रतिद्वंद्विता की भावना से, बोल्ड दिखने के लिए ही सभी निषेध तोड़कर पुरुष क्षेत्रों में प्रवेश का अहसास करना-कराना यह जैसे उनका ध्येय है।

दूसरी ओर है शिक्षिताओं, अर्धशिक्षिताओं, अशिक्षिताओं का वह बहुसंख्यक वर्ग जो आज भी पुरुष संरक्षणता में ही अपना हित देखता है। इसलिए पूर्ण समर्पण में ही सुख संतोष पाता है।

संतुलन में विश्वास करने वाला एक तीसरा वर्ग भी है जो कहीं स्वयं को दुहरी भूमिका निभाने के लिए खुशी-खुशी तैयार कर रहा है, कहीं शाही ढंग से इस दुहरी भूमिका को जैसे-तैसे ढोते हुए कराह-सा रहा है।

सर्वप्रथम स्त्रियों से ही अपेक्षा है, अपनी शक्ति, अपनी अस्मिता की पहचान की। अपनी हीनताओं-कुंठाओं से मुक्ति पाने की। अपना आत्मविश्लेषण कर मात्र भोग्यता बनने या बिकने से इंकार करने की। मध्यकालीन स्थितियों की देन कथित नारी सुलभ कमजोरियों पर विजय पाने की। अपना खोया सम्मान का अपने मानवी रूप की मान्यता वापस पाने के लिए माँ, गृहिणी की भूमिका को नकारने के बजाय, उसके साथ ही समाज नियंता की भूमिका जोड़ने जैसी सर्वसम्मत और सर्वकल्याणी माँग उठाने की। तभी सही मायने में सामाजिक बदलाव की भूमिका बन सकेगी और तभी आम भारतीय नारी को सामाजिक सुरक्षा की गारंटी दी जा सकेगी।

इस प्रकार 'हम विश्वयुद्ध नहीं होने देंगी और शांति बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न करेंगी' उसे दृढ़ प्रतिज्ञ होने की आवश्यकता है।

प्रतीक्षा है हिंसा और भेदभाव की समाप्ति के लिए घरों से पहल कर समाज, राष्ट्र व विश्व तक आने की और स्थायी विश्व शांति और सामाजिक सुरक्षा के लिए आत्मविश्वास, आत्मविकास, आत्मबल व आत्मसम्पन्नता के अचूक हथियारों से लैस होकर आपाधापी वाली निजी उन्नति की लड़ाई को सामूहिक जातीय उन्नति की लड़ाई में बदलने की जीत सुनिश्चित

रहे और वह सार्थक भी हो।

पृथ्वी माँ है मानवी माँ। सच्चे अर्थों में सबका भरण-पोषण करने वाली माता। वृक्ष, वनस्पति, कीट-पतंग, पक्षी मानव सबके लिए समान रूप से वरदायिनी। नारी का मानवी रूप ऐसा ही है।

स्त्री और पुरुष तत्त्व का सम्मिलन ही सृष्टि का उन्मेष है। सृष्टि का सर्वोत्तम समुन्नत विकास मानव सभ्यता में परिलक्षित होता है। आदि मानव से अधुनातन समाज संगठनों तक विविध सामाजिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक विचारधारा सतत् विकासमान रही है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका पति और पत्नी के रूप में पुरुष और स्त्री की रही है। पुरुष और स्त्री का यह दाम्पत्य भाव विवाह और परिवार का मूलाधार रहा है।

हिंदी कथा-साहित्य के प्रारम्भिक युग में लेखन के क्षेत्र में पुरुषों का वर्चस्व ही प्रधानतः दिखाई पड़ता हैं, किंतु स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य में महिलाएँ अन्य क्षेत्रों की भाँति ही कथा-लेखन के क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति में आ खड़ी हुई।

ऊषा देवी के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष के संबंधों का निर्णय समाज के हाथ में है।

चंद्रकिरण जी आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी कथा लेखिका है, इन्होंने भारतीय दाम्पत्य जीवन पर व्यंग्य किया है। रजनी जी आधुनिक विचारों वाली होने पर भी भारतीय संस्कृति में आस्था रखती है।

कृष्णा सोबती सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए यौनतृप्ति आवश्यक मानती है।

मन्नू भण्डारी की कहानियाँ नारी पुरुष के द्वन्द्व संबंधों से भरी हुई है। शशि प्रभा शास्त्री ने अपने लेखन को विभिन्न संदर्भो से जोड़कर बहुआयामी बनाया है।

हिंदी साहित्य की विभिन्न कृतियों में नारी की विविध छवियाँ उभरी हैं। कहीं वह माँ, बहन, भाभी है तो कहीं श्रद्धा, कहीं आधुनिक। इन्हीं में अपने जीवन की सार्थकता तलाशती नारी केवल पत्थर से तराशी मूर्ति का रूप ग्रहण करती जाती है। नारी जीवन के इन त्यागमय एवं महिमामंडित रूपों के बीच नारी की एक छवि वह भी है जो जीवन को उसकी संपूर्णता में जीना चाहती है, जहाँ वह अपने होने का अर्थ तलाशती है, और इस तरह समाज की स्थिर परंपराओं, मर्यादाओं एवं नैतिकताओं में एक विस्फोट पैदा करती है। कृष्णा सोबती का मित्रों मरजानी इसी दृष्टि से चर्चित रहा है।

कृष्णा सोबती के रचनायी व्यक्तित्व में अवज्ञा का स्वर प्रमुख है। समाज की परंपरागत रूढ़ियों या परंपराओं की जकड़बंदी को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। परंपरागत मान्यताओं के प्रति अस्वीकार और विद्रोह उनकी कृतियों की पहचान है पर यह विद्रोह निषेधात्मक नहीं है। बल्कि यहाँ स्थिति को पलटकर देखने और उसके नये रूप को उद्‌घाटित कर देने की कोशिश बराबर बनी रहती है।

परिवार और देह यह संस्कार के दो भिन्न धरातल है। मित्रों मरजानी की मूल संवेदना इन दो संस्कारों की टकराहट से ही निःसृत है। यहाँ भारतीय परिवार का जीवंत चित्र है जिनमें धनवंती जैसी आदर्श माँ है, जनको जैसी बेटी है, फूलवंती जैसी बहुएँ है। इन चरित्रों और परिवेश के ताने-बाने से बुनी कथा के केन्द्र में है मित्रों का व्यक्तित्व, वह मित्रों जो गृहस्थी को लच्छमन की लीक नहीं मानती। परिवार के अनुबंधों को स्वीकार नहीं करती, मित्रों के संस्कार जहाँ शरीर ही सबसे बड़ा सत्य है, उस पारिवारिक परिवेश में एक टकराहट और शोर पैदा करते हैं। वह शरीर को महत्व देती है संबंध को नहीं। पुरुष मात्र पुरुष है वह पति, भाई, जेठ का पिता नहीं। एक भारतीय परिवार में मित्रों मरजानी की मित्रों पुरुष के शोषण से परेशान है। यदि उसे शिक्षा अच्छी दी गई होती तो वह अपने व्यवहार में भी परिवर्तन ला सकती थी। वैसे आर्थिक आत्मनिर्भरता नारी को स्वतंत्र बना देती है उसकी अपनी अस्मिता बनी रहती है। परिवार में भी सम्मान रहता है भविष्य भी सुरक्षित रहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लेखिका निरुपमा सेवती - पतझड़ की आवाजें,
2. लेखिका मंजुल भगत - उपन्यास तिरछी बौछार।
3. लेखिका चंद्रकांता - बाकी सब खैरियत है,
4. प्रतिनिध गद्य रचनाएँ - महादेवी वर्मा।
5. भारत का सांस्कृतिक इतिहास - हरिदत्त।
6. भारतीय संस्कृति के स्वर - महादेवी वर्मा।
7. भाषा और संस्कृति - डॉ- भोलानाथ तिवारी।